सरकारी सांस्कृतिक नीतियों एवं कार्यशैली से कला जगत को गहरी क्षति

डॉ. प्राची सुभाष हलगांवकर
श्रीगणेष कला महाविद्यालय
शिवणी–कुंभारी ता.जि.अकोला
Email ID - pshalgaonkar60@gmail.com

प्रस्तावना :

इतिहास सदैव से साक्षी रहा है कि जब–जब जिस–जिस कला और कलाकार को तत्कालीन शासक–प्रशासक वर्ग ने संबल एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है, तब–तब उस कला और कलाकार ने सफलता के शिखर को प्राप्त किया है। यही कारण रहा कि भारतीय आस्थाओं के अनुसार हर इंसान को दाना–पानी भगवान देता है, किंतु फिर भी कलाकार ने अपने शासक को 'अन्नदाता' एवं 'पालनहार' आदि अनेक सम्मानसूचक शब्दों से नवाजा है।

राजस्थान में गुनीजनखानें तक राजाओं को कलाकार इन्हीं शब्दों से बहुधा पुकारा करते थे, क्योंकि गुनीजनखाने के समय के शासकों के कला–प्रेम के कारण ही संगीत की अनेक विधाओं के घरानों का जन्म एवं उनके कलाकारों का सम्मान संपूर्ण देश में हुआ। आज जब राजस्थान में उन घरानों के कलाकारों को संरक्षण नहीं है, फिर भी गाहे–बगाहे यह कलाकार किसी–न–किसी अवसर पर उन प्रशासकों की वर्तमान शासक पीढ़ी को भी इन्हीं सम्मानसूचक शब्दों से नवाज ते हुए सुने जा सकते हैं। इसका एक उदाहरण यह है कि लगभग चार वर्ष पूर्व जयपुर में किसी समारोह के उद्घाटन पर पधारे महाराजा ब्रिगेडियर भवानी सिंह जी को आयोजक कलाकार 'अन्नदाता' नाम से संबोधित कर रहे थे। यह सम्मान उस अद्वितीय योगदान के लिए है, जिसने कलाकार ही नहीं, कला–जगत का भी इतना महान उद्धार किया। किंतु परस्पर यह सम्मान हमने पिछले लगभग छप्पन वर्षों से खो दिया है, क्योंकि राजाओं के राज्य खत्म होते ही सरकार के संरक्षण में पहुंचने के बाद कलाकार और उनकी कलाओं के प्रोत्साहन कि कोई सकारात्मक दिशा, प्राथमिकता एवं योजना नहीं रही। अतः कलओं और कलाकारों को प्राणहीन होने का संताप व शाप झेलना पड़ा है। यही कारण है कि धृवपद की बानियों एवं खयाल आदि गायकियों के घरानों का प्रणेता राजस्थान लगभग उन घरानों के कलाकारों से ही खाली हो गया है। सरकार के संस्कृ ति– विभाग, सांस्कृतिक केंद्रों, अकादमियों एवं महकमों आदि की इस संरक्षण के प्रति गहरी जिम्मेदारी थी, किंतु उनके महत्वपूर्ण पदों पर आसीन उच्च अधिकारियों ने अपनी–अपनी रूचियों के अनुसार विकास की अपनी दिशाएं निर्धारित कर ली। मसलन संगीत–नाटक अकादमी के उच्च पदों पर शास्त्रीय संगीत से संबद्ध अधिकारियों की नियुक्ति लगभग नगण्य रही है; इस कारण इस दिशा में विकास के कोई बड़े मानक नजर नहीं आते। यदा–कदा नियुक्ति हुई भी, तो घर वालों एवं मिलने–जुलने वालों को ही प्राथमिकता दी गई, विकास की निष्पक्षता का नितांत अभाव रहा जाहिर है। ज़ाहिर है कि इन पदों पर अधिकांशतः लोक–संगीत एवं अभिनय से संबंध नियुक्तियों के कारण राजस्थान में इन विधाओं का वर्चस्व बढ़ गया। फिलहाल सरकार के पास ऐसी पुख्ता नीति नहीं है, जिससे सभी कलाओं का समरूप विकास संभव हो।

दक्षिणा के घर–घर में वीणा–मृदंग आदि के वादन, त्यागराज–मुथूस्वामी आदि के पदों के गायन एवं भरतनाट्यम–कथकली आदि नृत्यों के प्रति गहरी आस्था के साथ उनका प्रचलन देखा गया है, क्योंकि वहां की सरकार एवं मीडिया को भारतीय संस्कृति के संरक्षण की गहरी चिंता होने के कारण यह उनकी प्राथमिकता में है। इस सांस्कृतिक चेतना का उत्तर भारत में अभाव होने का कारण भी संस्कृ ति–विभाग की इस और उदासीनता है।

आकाशवाणी–दूरदर्शन में प्रसार–भारती के कदम रखने और कला के संरक्षण के लिए बनी हुई सरकारी सांस्कृतिक संस्थाओं में प्रायोजकों के हस्तक्षेप एवं व्यवसायिकता के आग्रह के कारण राज्य के अनेक अनुभवी, गुणी एवं समर्पित कला–साधकों के लिए, अवसर नहीं है। और, ना ही इन केंद्रों में उन कलाकारों की कला के संरक्षण के कोई पुख्ता प्रयास दिखाई देते हैं। बहुत–सा कला–भंडार हम खो चुके हैं और निरंतर होते जा रहे हैं। यही कारण है कि प्रोत्साहन के के अभाव में अनेक गुणी साधक निरुत्साहित एवं प्राणहीन होते जा रहे हैं, प्रतिभा–पलायन होता रहा है और निरंतर हो रहा है। राजस्थान विश्वविद्यालय में आयोजित एक पुनश्चर्या–पाठ्यक्रम में आकाशवाणी–निदेशक से कुछ कलाकारों ने प्रश्न किया था कि 'श्रीमान! शास्त्रीय संगीत के अनेक कलाकार वर्ष–भर से घर में बैठे हुए हैं, इसपर आपका क्या कहना है?' माननीय का उत्तर था कि 'आप प्रायोजक ढूंढ लाओ, कार्यक्रम हो जाएगा।' किसी ने इस पर व्यंग किया था कि 'फिर तो सड़क पर चलता हुआ कोई भी व्यक्ति यदि प्रायोजक जुटाने की हैसियत में है, तो आपकी दृष्टि में वही कलाकार है! आकाशवाणी द्वारा चयनित होना अब जरूरी नहीं होगा!' प्रसार– माध्यमों में अधिकारियों की इस निश्चिन्तता से कला–जगत में किस उद्धार की हम कल्पना कर सकेंगे?

आकाशवाणी आदि प्रसार–माध्यमों में अब पारदर्शिता एवं नियमों में निरंतर ढील देखी जा सकती है। कुछ अधिकारियों ने अपने मेलजोल वाले वरिष्ठ कलाकारों के पुराने संचित रिकॉर्डो पर अपनी अनुशंसा भेजकर उन्हें 'टॉप–ग्रेड' करा दिया, कुछ घरानेदार कलाकारों को बिना परीक्षा दिए अपने विशेषाधिकारों से 'टॉप–ग्रेड' करा दिया; बाकी कलाकारों के लिए परीक्षाएं निर्धारित है। कभी कोई कलाकार अधिकारी हो गया, तो अपने प्रभाव के बल पर उसने अपने जाति–भाई–भतीजे एवं घराने के कलाकारों को 'टॉप–ग्रेड' दिलवा दी। उच्च श्रेणी के लिए एक बार किसी आकाशवाणी–केंद्र में कार्यरत किसी कलाकार के पुत्र की रिकॉर्डिंग हुई। कुछ देर में वह कलाकार अपने पुत्र का एक कार्यक्रम–अधिकारी से मांगकर ले गया। वहां बैठे एक अन्य व्यक्ति ने जब इसका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि अमुक कलाकार कार्य की सफलता के लिए मंत्र फूटता है। इसपर उस व्यक्ति ने अंदेशा जताया कि यह कलाकार अपने पुत्र के टेप का नंबर भी तो नोट कर सकता है, जोकि नितांत गुप्त माना गया है! इस मिलीभगत में हम किस नियम और ईमानदारी की बात करेंगे? आकाशवाणी के लगभग प्रारंभ से ही वहां गाने–बजाने वाले कलाकारों को सम्मान–स्वरूप 'टॉप–ग्रेड' दिए जाने का प्रावधान होना चाहिए, क्योंकि उनका इस प्रसार–माध्यमों की स्थापना एवं अस्तित्व–रक्षा में बड़ा योगदान रहा है। अन्य विभागों में तो इतनी दीर्घा सेवाओं के लिए प्रायः प्रमोशन का प्रावधान होता है।

सरकारी केंद्रों में कलाकारों के पारिश्रमिक की, कलाकारों के सम्मान के अनुरूप किसी न्यायोचित योजना एवं नीति का अभाव ही रहता है। कई कनिष्ठ कलाकार अपनी पहुंच से पैंतीस हजार रुपए अपनी फीस दे करवा लेते हैं, जबकि वरिष्ठ कलाकार को दस–बीस हजार में संतोष करने के लिए कहा जाता है। राजस्थान से बाहर के कलाकारों को लंबी–चौड़ी फीस तक दी जाती रही है, जबकि स्थानीय कलाकारों को पैसे का अभाव जता दिया जाता है। राजस्थान में अनेक विधाओं के विशेषज्ञ बैठे हुए हैं, फिर भी बाहर से बुलाकर कलाकारों के कार्यशालाएं कराई जाती है। आयोजनों के लिए केंद्र द्वारा अपना सभागार अपने मेलजोल वाली संस्थाओं एवं व्यक्तियों को बार–बार निशुल्क दे दिया जाता है, जबकि कुछ संस्थाओं को कार्यक्रम में बिजली आदि का लंबा–चौड़ा खर्चा बता कर निर्णय करने का आश्वासन देकर कई दिनों तक चक्कर लगवाया जाता है। और, तबतक उस कार्यक्रम की तिथि ही निकट आ जाती है। जब राजस्थान से बाहर की संस्थाओं द्वारा वहां के कलाकारों के आयोजन यहां के सांस्कृतिक केंद्रों के सहयोग से आयोजित किए जाते हैं, तो फिर क्यों नहीं यहां के कलाकारों के आयोजन यहां की सरकारी संस्थाओं द्वारा राजस्थान से बाहर करवाए जाते? राजाओं के समय में भी राजा अपने राज्य के अनेक गुणी संगीतज्ञों को बाहर के राज्यों में भेजकर अपने को गौरवान्वित महसूस करते थे। यहां की सरकार ने यदा–कदा यह कार्य विदेशों में कलाकारों को भेजकर किया भी, किंतु वह मात्र 'लोक–संगीत' में ही सिमट कर रह गया।

सरकार द्वारा आयोजनों के लिए सदैव कुछ गिनी–चुनी संस्थाओं को ही आर्थिक सहायता दे देना निर्धारित है, मानो वे ही इस की एकमात्र ठेकेदार हो, जबकि संस्कृति के विकास में निरंतर सक्रिय अन्य संस्थाओं को अपनी जेब से ही पैसे खर्च करके संस्कृति के संरक्षण का कार्य करना पड़ता है। यह बंटवारा निरंतर कार्य करने वाली संस्थाओं के बीच समान रूप से किया जाना चाहिए। सरकार सामान्यतः भजन–कीर्तनों के आयोजनों पर ही आर्थिक सहायता देती है, जबकि लुप्तप्राय एवं दुर्लभ विधाओं के आयोजनों द्वारा उन्हें संरक्षण देना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए।

अकादमी द्वारा आर्थिक अभावग्रस्त, असहाय, असमर्थ एवं बेसहारा कलाकारों को आजीवन सहायता प्रदान की जाती है, किंतु अकादमी ऐसे भी कलाकारों को सहायता प्रदान कर रही है, जिन्हें पेंशन मिल रही है, जिनके पुत्र उन्हें सम्मान से रखते हैं और वह अच्छी नौकरियों में भी कार्यरत है।

देश में पुरस्कारों से कलाकारों का कद ऊंचा माना जाता है और विदेश से पुरस्कृत होने पर तो उनकी महिमा चौगुनी हो जाती है। किंतु अबतक की स्थिति को देखते हुए तो इस पुरस्कार की संस्कृति को ही खत्म कर दिया जाना चाहिए। देश के सर्वोच्च माने जाने वाले 'पदम' आदि पुरस्कारों ने भी अनेक गुणी महान कलाकारों को हीनताग्रस्त बना दिया है। करण, वर्तमान में जिन राजनीतिक दांव–पेचों से वे हथिया लिए जाते हैं, वे साधक उस दौड़ में शामिल होने में असमर्थ है। वे समय के अनुरूप न ढल सकने के कारण सदैव अपने को असफल महसूस करते हैं। इस सम्मान को दिए जाने के लिए, देखा जाए तो संस्कृति–विभाग–सहित सरकार की गहरी जिम्मेदारी होनी चाहिए, किंतु वहां निष्पक्षता एवं पारदर्शिता का गहरा अभाव है। लेखिका स्वयं 'पद्म'–पुरस्कारों की चयन–समिति की सदस्य थी। अप्रैल 2003 में शासन–सचिवालय में संस्कृत–विभाग में मीटिंग के दौरान संस्कृति–सचिव ने सदस्यों को बताया था कि हर राज्य से वहां के उल्लेखनीय कार्य करने वाले कला–साधकों का नाम वहां की सरकार द्वारा मीटिंग में अनुमोदित होकर केंद्र–सरकार को भेजा जाता है। उसके लिए कलाकारों के जीवन–परिचय का संकलन 'जवाहर कला–केंद्र' द्वारा किया भी गया। किंतु उसके बाद सदस्यों को मीटिंग में बुलाया ही नहीं गया। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठने स्वाभाविक ही है कि चयन–अचयन का आधार क्या रहा, समिति के लोगों के हस्ताक्षर क्यों नहीं कराए गए, और चयन प्रक्रिया क्या रही? दरअसल, ऐसी कोई पारदर्शिता रखी ही नहीं गई। सोचिए, कलाकारों की कला के संरक्षण–संवर्धन के लिए गठित संस्कृति–विभाग कितने समय से कलाकारों के अतीत में अपने व्यक्तिगत निर्णय ले रहा है? उनकी नीतियों में अपेक्षित प्राथमिकता तो कहीं है ही नहीं!

केंद्र में 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद'(आई.सी.सी.आर) देश के कला–साधकों को विदेशों में परिचित कराने में महत् उद्देश्य के लिए गठित की गई है, जिसके लिए कलाकारों के ऑडियो–वीडियो को मंगवाकर, विशेषज्ञों की समिति द्वारा उसे अनुमोदित कराकर परिषद की सूची में शामिल तो कर लिया जाता है, किंतु 'आई.सी.सी.आर' पत्र द्वारा चयन की सूचना देता हुआ यह उल्लेख जरूर करता है कि 'परिषद की कोई जिम्मेदारी नहीं है कि आप के चयन के बाद आपको विदेश भेजा ही जाए!' कारण भी लोग जानते हैं। औपचारिकता के लिए बनाई गई सैकड़ों कलाकारों की उक्त सूची में से मात्र दस–बीस कलाकार ही अपनी 'चाणक्य–नीति' के बार–बार विदेश–यात्रा करते रहे हैं। और, ऐसा लंबे अरसे से हो रहा है।

निष्कर्ष :

इससे हमें यह निष्कर्ष निकलता है कि, कुल मिलाकर कहें तो संस्कृति के उच्च महकमों में ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति का गहरा अभाव है, जो इस दिशा में प्राथमिकता से शोध एवं आकलन करें और निष्पक्ष दृष्टि रखते हुए उस नीति का गठन करें, जिससे कला की हर विधा और कलाकारों के हर वर्ग का सम्मान स्वरूप में विकास हो। केंद्रों को स्वायत्तता नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि सरकारी शिकंजे के बावजूद स्वायत्तता का खुला खेल खेला जा रहा है। इस दशा में, 'स्वायत्तता की निरंकुशता' की क्या कल्पना की जा सकती है? जरूरत है हर विधा के कलाकारों और सरकार के तालमेल से बनाई गई ऐसी

सांस्कृतिक नीति की, जिसमें सर्वांगीण विकास की चहुंमुखी योजनाओं के साथ पारदर्शिता भी हो, जो कभी कलाकारों को कुछ हद तक तो संतुष्ट कर सके! फिर, कम–से–कम अधिकारियों की तानाशाही के खिलाफ धरने तो नहीं दिए जा सकेंगे!

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- शास्त्री, के वासुदेव, (1999), संगीत शास्त्र, प्रकाशन शाखा, उत्तर प्रदेश.
- व्यास, डॉ भोला शंकर, (1959), संप्रदाय और उसके सिद्धांत, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.
- शर्मा, सत्यवती, (2007), सत्यवती शर्मा, नेहाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
- बृहस्पति, श्री कैलाश चंद्रदेव, (2010), भारत का संगीत सिद्धांत, प्रकाशन शाखा, उत्तर प्रदेश.
- बृहस्पति, आचार्य, (2009), संगीत समयसार, भारतीय ज्ञानपीठ.
- भातखंडे, पंडित विष्णु नारायण, (1957), भातखंडे संगीत शास्त्र, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तरप्रदेश.